अध्याय - ४०

श्री साईबाबा की कथाएँ

(१) श्री. बी.व्ही. देव की माता के उद्यापन उत्सव में सम्मिलित होना, और (२) हेमाडपंत के भोजन-समारोह में चित्र के रूप में प्रगट होना।

इस अध्याय में दो कथाओं का वर्णन है:

(१) बाबा किस प्रकार श्रीमान् देव की माँ के यहाँ उद्यापन में सम्मिलित हुए। और (२) बाबा किस प्रकार होली त्यौहार के भोजन समारोह के अवसर पर बाँद्रा में हेमाडपंत के गृह पधारे।

प्रस्तावना

श्री साई समर्थ धन्य हैं, जिनका नाम बड़ा सुन्दर है! वे सांसारिक और आध्यात्मिक दोनों ही विषयों में अपने भक्तों को उपदेश देते हैं और भक्तों को अपना जीवनध्येय प्राप्त करने में सहायता प्रदान कर उन्हें सुखी बनाते हैं। श्री साई अपना वरद हस्त भक्तों के सिर पर रखकर उन्हें अपनी शक्ति प्रदान करते हैं। वे भेदभाव की भावना को नष्ट कर उन्हें अप्राप्य वस्तु की प्राप्ति कराते हैं। भक्त लोग साई के चरणों पर भक्तिपूर्वक गिरते हैं और श्री साईबाबा भी भेदभावरहित होकर प्रेमपूर्वक भक्तों को हृदय से लगाते हैं। वे भक्तगण में ऐसे सम्मिलित हो जाते हैं, जैसे वर्षाॠतु में समुद्र नदियों से मिलता तथा उन्हें अपनी शक्ति और मान देता है। इससे यह सिद्ध होता है कि जो भक्तों की लीलाओं का गुणगान करते हैं, वे ईश्वर को उन लोगों से अपेक्षाकृत अधिक प्रिय हैं, जो बिना किसी मध्यस्थ के ईश्वर की लीलाओं का वर्णन करते हैं।

श्रीमती देव का उद्यापन उत्सव

श्री. बी.व्ही. देव डहाणू (जिला ठाणे) में मामलतदार थे। उनकी माता ने लगभग पच्चीस या तीस व्रत लिये थे, इसलिये अब उनका उद्यापन करना आवश्यक था।

उद्यापन के साथ-साथ सौ-दो सौ ब्राह्मणों का भोजन भी होने वाला था। श्री देव ने एक तिथि निश्चित कर बापूसाहेब जोग को एक पत्र शिरडी भेजा। उसमें उन्होंने लिखा कि "तुम मेरी ओर से श्री साईबाबा को उद्यापन और भोजन में सम्मिलित होने का निमंत्रण दे देना और उनसे प्रार्थना करना कि उनकी अनुपस्थिति में उत्सव अपूर्ण ही रहेगा। मुझे पूर्ण आशा है कि वे अवश्य डहाणू पधार कर दास को कृतार्थ करेंगे।" बापूसाहेब जोग ने बाबा को वह पत्र पढ़कर सुनाया। उन्होंने उसे ध्यानपूर्वक सुना और शुद्ध हृदय से प्रेषित निमंत्रण जानकर वे कहने लगे कि "**जो मेरा स्मरण करता है, उसका मुझे सदैव ही ध्यान रहता है। मुझे यात्रा के लिए कोई भी साधन - गाड़ी, ताँगा या विमान की आवश्यकता नहीं है। मुझे तो जो प्रेम से पुकारता है, उसके सम्मुख मैं अविलम्ब ही प्रगट हो जाता हूँ।**" उसे एक सुखद पत्र भेज दो कि मैं और दो व्यक्तियों के साथ अवश्य आऊँगा। जो कुछ बाबा ने कहा था, जोग ने श्री. देव को पत्र में लिखकर भेज दिया। पत्र पढ़कर देव को बहुत प्रसन्नता हुई, परन्तु उन्हें ज्ञात था कि बाबा केवल राहाता, रुई और नीमगाँव के अतिरिक्त और कहीं भी नहीं जाते हैं। फिर उन्हें विचार आया कि उनके लिये क्या असंभव है? उनकी जीवनी अपार चमत्कारों से भरी हुई है। वे तो सर्वव्यापी हैं। वे किसी भी वेश में अनायास ही प्रगट होकर अपना वचन पूर्ण कर सकते हैं।

उद्यापन के कुछ दिन पूर्व एक संन्यासी डहाणू स्टेशन पर उतरा, जो बंगाली संन्यासियों के समान वेशभूषा धारण किये हुये था। दूर से देखने में ऐसा प्रतीत होता था कि वह गौरक्षा संस्था का स्वयंसेवक है। वह सीधा स्टेशनमास्टर के पास गया और उनसे चंदे के लिये निवेदन करने लगा। स्टेशनमास्टर ने उसे सलाह दी कि तुम यहाँ के मामलेदार के पास जाओ और उनकी सहायता से ही तुम यथेष्ठ चंदा प्राप्त कर सकोगे। ठीक उसी समय मामलेदार भी वहाँ पहुँच गये। तब स्टेशन मास्टर ने संन्यासी का परिचय उनसे कराया और वे दोनों स्टेशन के प्लेटफॉर्म पर बैठे वार्त्तालाप करते रहे। मामलेदार ने बताया कि यहाँ के प्रमुख नागरिक श्री. रावसाहेब नरोत्तम सेठी ने धर्मार्थ कार्य के निमित्त चन्दा एकत्र करने की एक नामावली बनाई है। अतः अब एक और दूसरी नामावली बनाना कुछ उचित सा प्रतीत नहीं होता। इसलिये श्रेयस्कर तो यही होगा कि आप दो-चार माह के पश्चात् पुनः यहाँ दर्शन दें। यह सुनकर संन्यासी वहाँ से चला गया और एक माह पश्चात् श्री. देव के घर के सामने ताँगे से उतरा। तब उसे देखकर देव ने मन ही मन सोचा कि वह चन्दा माँगने ही आया है। उसने श्री. देव को कार्यव्यस्त देखकर उनसे कहा "श्रीमान्! मैं चन्दे के निमित्त नहीं, वरन् भोजन करने के लिये आया हूँ।"

देव ने कहा "बहुत आनन्द की बात है, आपका सहर्ष स्वागत है।"

संन्यासी - मेरे साथ दो बालक और हैं।
देव - तो कृपया उन्हें भी साथ ले आइये।

भोजन में अभी दो घण्टे का विलम्ब था। इसलिये देव ने पूछा - यदि आज्ञा हो तो मैं किसी को उनको बुलाने को भेज दूँ।

संन्यासी - आप चिंता न करें, मैं निश्चित समय पर उपस्थित हो जाऊँगा।
देव ने उनसे दोपहर में पधारने की प्रार्थना की। ठीक १२ बजे दोपहर को तीन मूर्त्तियाँ वहाँ पहुँचीं और भोज में सम्मिलित होकर भोजन करके वहाँ से चली गईं।

उत्सव समाप्त होने पर देव ने बापूसाहेब जोग को पत्र में उलाहना देते हुए बाबा पर वचन-भंग करने का आरोप लगाया। जोग वह पत्र लेकर बाबा के पास गये, परन्तु पत्र पढ़ने के पूर्व ही बाबा उनसे कहने लगे-"अरे! मैंने वहाँ जाने का वचन दिया था तो मैंने उसे धोखा नहीं दिया। उसे सूचित करो कि मैं अन्य दो व्यक्तियों के साथ भोजन में उपस्थित था, परन्तु जब वह मुझे पहचान ही न सका, तब निमंत्रण देने का कष्ट ही क्यों उठाया था? उसे लिखो कि उसने सोचा होगा कि वह संन्यासी चन्दा माँगने आया है। परन्तु क्या मैंने उसका सन्देह दूर नहीं कर दिया था कि दो अन्य व्यक्तियों के साथ मैं भोजन के लिये आऊँगा और क्या वे त्रिमूर्त्तियाँ ठीक समय पर भोजन में सम्मिलित नहीं हुईं? देखो! **मैं अपना वचन पूर्ण करने के लिये अपना सर्वस्व निछावर कर दूँगा। मेरे शब्द कभी असत्य न निकलेंगे।**" इस उत्तर से जोग के हृदय में बहुत प्रसन्नता हुई और उन्होंने पूर्ण उत्तर लिखकर देव को भेज दिया। जब देव ने उत्तर पढ़ा तो उनकी आँखों से अश्रुधाराएँ प्रवाहित होने लगीं। उन्हें अंपने आप पर बड़ा क्रोध आ रहा था कि मैंने व्यर्थ ही बाबा पर दोषारोपण किया। वे आश्चर्यचकित से हो गये कि किस तरह मैंने संन्यासी की पूर्व यात्रा से धोखा खाया, जो कि चन्दा माँगने आया था और संन्यासी के शब्दों का अर्थ भी न समझ पाया कि "अन्य दो व्यक्तियों के साथ मैं भोजन को आऊँगा।"

इस कथा से विदित होता है कि **जब भक्त अनन्य भाव से सद्‌गुरु की शरण में आता है, तभी उसे अनुभव होने लगता है कि उसके सब धार्मिक कृत्य उत्तम प्रकार से चलते और निर्विघ्न समाप्त होते रहते हैं।**

हेमाडपन्त का होली त्यौहार पर भोजन-समारोह

अब हम एक दूसरी कथा लें, जिसमें बतलाया गया है कि बाबा ने किस प्रकार चित्र के रूप में प्रगट हो कर अपने भक्तों की इच्छा पूर्ण की।

सन् १९१७ में होली पूर्णिमा के दिन हेमाडपंत को एक स्वप्न हुआ। बाबा उन्हें एक संन्यासी के वेश में दिखे और उन्होंने हेमाडपंत को जगाकर कहा कि "मैं आज दोपहर को तुम्हारे यहाँ भोजन करने आऊँगा।" जागृत करना भी स्वप्न का एक भाग ही था। परन्तु जब उनकी निद्रा सचमुच में भंग हुई तो उन्हें न तो बाबा और न कोई अन्य संन्यासी ही दिखाई दिया। वे अपनी स्मृति दौड़ाने लगे और अब उन्हें संन्यासी के प्रत्येक शब्द की स्मृति हो आई। यद्यपि वे बाबा के सान्निध्य का लाभ गत सात वर्षों से उठा रहे थे तथा उन्हीं का निरंतर ध्यान किया करते थे, परंतु यह कभी भी आशा न थी कि बाबा भी कभी उनके घर पधार कर भोजन कर उन्हें कृतार्थ करेंगे। बाबा के शब्दों से अति हर्षित होते हुए वे अपनी पत्नी के समीप गये और कहा कि "आज होली का दिन है। एक संन्यासी अतिथि भोजन के लिये अपने यहाँ पधारेंगे। इसलिये भात थोड़ा अधिक बनाना। उनकी पत्नी ने अतिथि के सम्बन्ध में पूछताछ की। प्रत्युत्तर में हेमाडपंत ने बात गुप्त न रखकर स्वप्न का वृत्तान्त सत्य-सत्य बतला दिया। तब वे सन्देहपूर्वक पूछने लगीं कि क्या यह भी कभी संभव है कि वे शिरडी के उत्तम पक्वान्न त्यागकर इतनी दूर बान्द्रा में अपना रूखा-सूखा भोजन करने को पधारेंगे? हेमाडपंत ने विश्वास दिलाया कि उनके लिये क्या असंभव है? हो सकता है, वे स्वयं न आयें और कोई अन्य स्वरूप धारण कर यहाँ पधारें। इस कारण थोड़ा अधिक भात बनाने में हानि ही क्या है? इसके उपरान्त भोजन की तैयारियाँ प्रारम्भ हो गईं। होलिका पूजन प्रारम्भ हो गया और पत्तलें बिछाकर उनके चारों ओर राँगोली डाल दी गई। दो पंक्तियाँ बनाई गईं और बीच में अतिथि के लिए स्थान छोड़ दिया गया। घर के सभी कुटुम्बी-पुत्र, नाती, लड़कियाँ, दामाद इत्यादि ने अपना-अपना स्थान ग्रहण कर लिया और भोजन परोसना भी प्रारम्भ हो गया। जब भोजन परोसा जा रहा था तो प्रत्येक व्यक्ति उस अज्ञात अतिथि की उत्सुकतापूर्वक राह देख रहा था। जब मध्याह्न भी हो गया और कोई भी न आया, तब द्वार बन्द कर साँकल चढ़ा दी गई। अन्न शुद्धि के लिये घृत वितरण हुआ, जो कि भोजन प्रारम्भ करने का संकेत है। वैश्वदेव (अग्नि) को औपचारिक आहुति देकर श्रीकृष्ण को नैवेद्य अर्पण किया गया। फिर सभी लोग जैसे ही भोजन प्रारम्भ करने वाले थे कि इतने में सीढ़ी पर किसी के चढ़ने की आहट स्पष्ट आने लगी। हेमाडपंत ने शीघ्र उठकर साँकल खोली और दो व्यक्तियों (१) अली मुहम्मद और (२) मौलाना इस्मू मुजावर को द्वार पर खड़े

हुए पाया। इन लोगों ने जब देखा कि भोजन परोसा जा चुका है और केवल प्रारम्भ करना ही शेष है तो उन्होंने विनीत भाव में कहा कि आपको बड़ी असुविधा हुई, इसके लिये हम क्षमाप्रार्थी हैं। आप अपनी थाली छोड़कर दौड़े आये हैं तथा अन्य लोग भी आपकी प्रतीक्षा में हैं, इसलिये आप अपनी यह संपदा सँभालिये। इससे सम्बन्धित आश्चर्यजनक घटना किसी अन्य सुविधाजनक अवसर पर सुनाएँगे – ऐसा कहकर उन्होंने पुराने समाचार पत्रों में लिपटा हुआ एक पैकिट निकालकर उसे खोलकर मेज पर रख दिया। कागज के आवरण को ज्यों ही हेमाडपंत ने हटाया तो उन्हें बाबा का एक बड़ा सुन्दर चित्र देखकर महान् आश्चर्य हुआ। बाबा का चित्र देखकर वे द्रवित हो गये। उनके नेत्रों से आँसुओं की धारा प्रवाहित होने लगी और उनके समूचे शरीर में रोमांच हो आया। उनका मस्तक बाबा के श्री चरणों पर झुक गया। वे सोचने लगे कि बाबा ने इस लीला के रूप में ही मुझे आशीर्वाद दिया है। कौतूहलवश उन्होंने अली मुहम्मद से प्रश्न किया कि बाबा का यह मनोहर चित्र आपको कहाँ से प्राप्त हुआ? उन्होंने बताया कि मैंने इसे एक दूकान से खरीदा था। इसका पूर्ण विवरण मैं किसी अन्य समय के लिये शेष रखता हूँ। कृपया आप अब भोजन कीजिए, क्योंकि सभी आपकी ही प्रतीक्षा कर रहे हैं। हेमाडपंत ने उन्हें धन्यवाद देकर नमस्कार किया और भोजन गृह में आकर अतिथि के स्थान पर चित्र को मध्य में रखा तथा विधिपूर्वक नैवेद्य अर्पण किया। सब लोगों ने ठीक समय पर भोजन प्रारम्भ कर दिया। चित्र में बाबा का सुन्दर मनोहर रूप देखकर प्रत्येक व्यक्ति को प्रसन्नता हुई और इस घटना पर आश्चर्य भी हुआ कि वह सब कैसे घटित हुआ? इस प्रकार बाबा ने हेमाडपंत को स्वप्न में दिये गए अपने वचनों को पूर्ण किया।

इस चित्र की कथा का पूर्ण विवरण, अर्थात् अली मुहम्मद को चित्र कैसे प्राप्त हुआ और किस कारण से उन्होंने उसे लाकर हेमाडपंत को भेंट किया, इसका वर्णन अगले अध्याय में किया जायेगा।

॥ श्री सद्‌गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु ॥

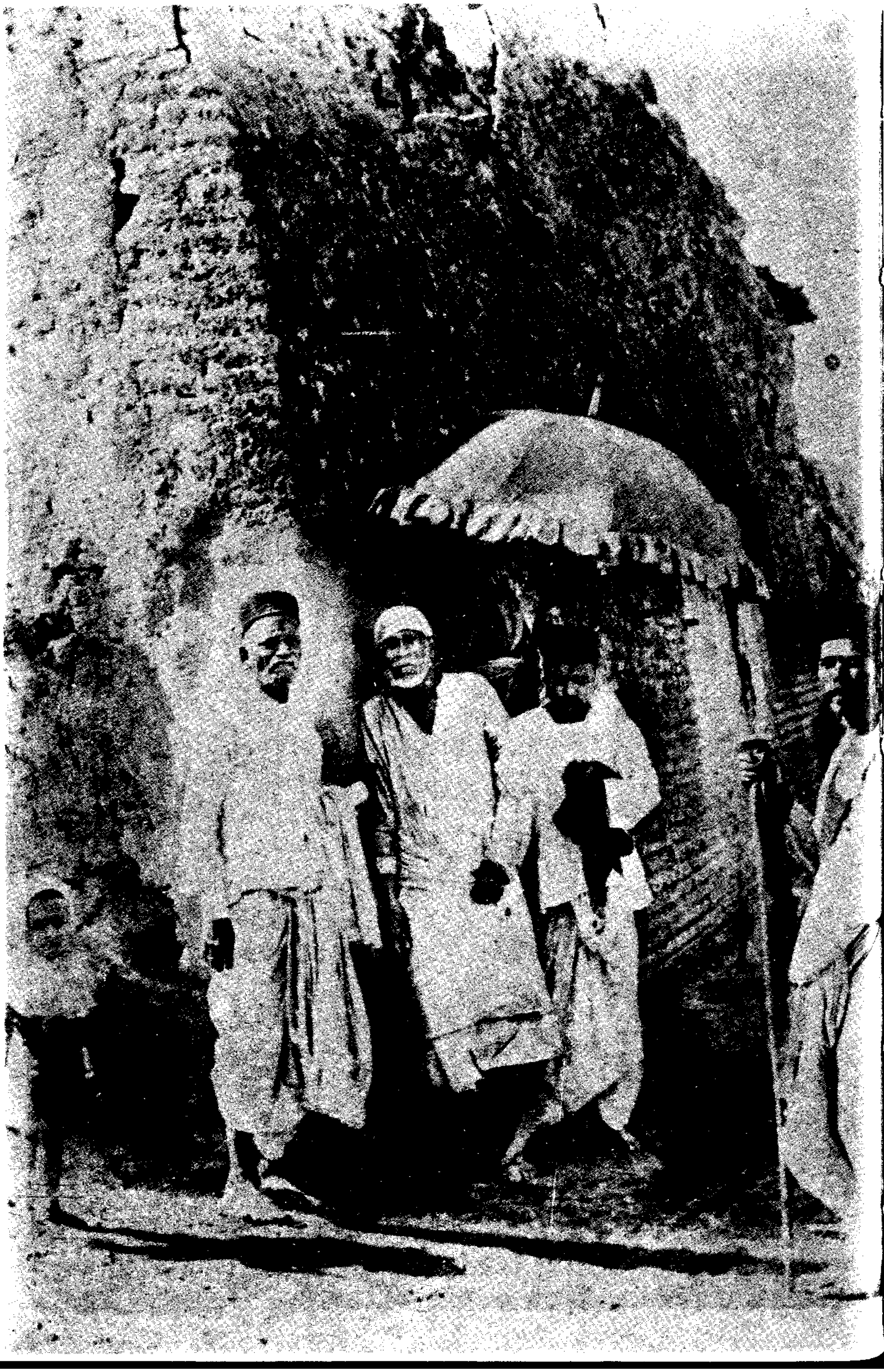

अध्याय - ४१

चित्र की कथा, चिंदियों की चोरी और ज्ञानेश्वरी के पठन की कथा।

गत अध्याय में वर्णित घटना के नौ वर्ष पश्चात् अली मुहम्मद हेमाडपंत से मिले और वह पिछली कथा निम्नलिखित रूप में सुनाईः -

"एक दिन बम्बई में घूमते-फिरते मैंने एक दूकानदार से बाबा का चित्र खरीदा। उसे फ्रेम कराया और अपने घर (मध्य बम्बई की बस्ती में) लाकर दीवाल पर लगा दिया। मुझे बाबा से स्वाभाविक प्रेम था। इसलिये मैं प्रतिदिन उनका श्री दर्शन किया करता था। जब मैंने आपको (हेमाडपंत को) वह चित्र भेंट किया, उसके तीन माह पूर्व मेरे पैर में सूजन आने के कारण शल्यचिकित्सा भी हुई थी। मैं अपने साले नूर मुहम्मद के यहाँ पड़ा हुआ था। खुद मेरे घर पर तीन माह से ताला लगा था और उस समय वहाँ पर कोई न था। केवल प्रसिद्ध बाबा अब्दुल रहमान, मौलाना साहेब, मुहम्मद हुसेन, साई बाबा, ताजुद्दीन बाबा और अन्य सन्त चित्रों के रूप में ही वहाँ विराजमान थे, परन्तु कालचक्र ने उन्हें भी न छोड़ा। मैं वहाँ (बम्बई) बीमार पड़ा हुआ था तो फिर मेरे घर में उन लोगों (फोटो) को कष्ट क्यों हो? ऐसा समझ में आता है कि वे भी आवागमन (जन्म और मृत्यु) के चक्कर से मुक्त नहीं हैं! अन्य चित्रों की गति तो उनके भाग्यानुसार ही हुई, परन्तु केवल श्री साईबाबा का ही चित्र कैसे बच निकला, इसका-रहस्योद्‌घाटन अभी तक कोई नहीं कर सका है! इससे श्री साईबाबा की सर्वव्यापकता और उनकी असीम शक्ति का पता चलता है।"

"कुछ वर्ष पूर्व मुझे मुहम्मद हुसेन थारिया टोपण से सन्त बाबा अब्दुल रहमान का चित्र प्राप्त हुआ था, जिसे मैंने अपने साले नूर मुहम्मद पीरभाई को दे दिया, जो गत आठ वर्षों से उसकी मेज पर पड़ा हुआ था। एक दिन उसकी दृष्टि इस चित्र पर पड़ी, तब उसने उसे फोटोग्राफर के पास ले जाकर उसकी बड़ी फोटो बनवाई और उसकी कापियाँ

अपने कई रिश्तेदारों और मित्रों में वितरित कीं। उनमें से एक प्रति मुझे भी मिली थी, जिसे मैंने अपने घर की दीवाल पर लगा रखा था। नूर मुहम्मद सन्त अब्दुल रहमान के शिष्य थे। जब सन्त अब्दुल रहमान साहेब का आम दरबार लगा हुआ था, तभी नूर मुहम्मद उन्हें वह फोटो भेंट करने के हेतु उनके समक्ष उपस्थित हुए। फोटो को देखते ही वे अति क्रोधित हो नूर मुहम्मद को मारने दौड़े तथा उन्हें बाहर निकाल दिया। तब उन्हें बड़ा दुःख और निराशा हुई। फिर उन्हें विचार आया कि मैंने इतना रुपया व्यर्थ ही ख़र्च किया, जिसका परिणाम अपने गुरु के क्रोध और अप्रसन्नता का कारण बना। उनके गुरु मूर्तिपूजा के विरोधी थे, इसलिये वे हाथ में फोटो लेकर अपोलो बन्दर पहुँचे और एक नाव किराये पर लेकर बीच समुद्र में वह फोटो विसर्जित कर आये। नूर मुहम्मद ने अपने सब मित्रों और सम्बंधियों से भी प्रार्थना कर सब फोटो वापस बुला लिये (कुल छः फोटो थे) और एक मछुए के हाथ से बींद्रा के निकट समुद्र में विसर्जित करा दिये।''

''इस समय मैं अपने साले के घर पर ही था। तब नूर मुहम्मद ने मुझसे कहा कि यदि तुम सन्तों के सब चित्रों को समुद्र में विसर्जित करा दोगे तो तुम शीघ्र स्वस्थ हो जाओगे। यह सुनकर मैंने मैनेजर मेहता को अपने घर पर भेजा और उसके द्वारा घर में लगे हुए सब चित्रों को समुद्र में फिकवा दिया। दो माह पश्चात् जब मैं अपने घर वापस लौटा तो बाबा का चित्र पूर्ववत् लगा देखकर मुझे महान् आश्चर्य हुआ। मैं समझ न सका कि मेहता ने अन्य सब चित्र तो निकालकर विसर्जित कर दिये, पर केवल यही चित्र कैसे बच गया? तब मैंने तुरन्त ही उसे निकाल लिया और सोचने लगा कि कहीं मेरे साले की दृष्टि इस चित्र पर पड़ गई तो वह इसकी भी इतिश्री कर देगा। जब मैं ऐसा विचार कर ही रहा था कि इस चित्र को कौन अच्छी तरह सँभाल कर रख सकेगा, तब स्वयं श्री साईबाबा ने सुझाया कि मौलाना इस्मू मुजावर के पास जाकर उनसे परामर्श करो और उनकी इच्छानुसार ही कार्य करो। मैंने मौलाना साहेब से भेंट की और सब बातें उन्हें बतलाईं। कुछ देर विचार करने के पश्चात् वे इस निर्णय पर पहुँचे कि इस चित्र को आपको (हेमाडपंत) ही भेंट करना उचित है, क्योंकि केवल आप ही इसे उत्तम प्रकार से सँभालने के लिये सर्वथा सत्पात्र हैं। तब हम दोनों आप के घर आये और उपयुक्त समय पर ही यह चित्र आपको भेंट कर दिया। इस कथा से विदित होता है कि बाबा त्रिकालज्ञानी थे और कितनी कुशलता से समस्या हल कर भक्तों की इच्छायें पूर्ण किया करते थे। निम्नलिखित कथा इस बात का प्रतीक है कि आध्यात्मिक जिज्ञासुओं पर बाबा किस प्रकार स्नेह रखते तथा किस प्रकार उनके कष्ट निवारण कर उन्हें सुख पहुँचाते थे।

चिन्दियों की चोरी और ज्ञानेश्वरी का पठन

श्री. बी.व्ही. देव, जो उस समय डहाणू के मामलेदार थे, को दीर्घकाल से अन्य धार्मिक ग्रन्थों के साथ-साथ ज्ञानेश्वरी के पठन की तीव्र इच्छा थी। (ज्ञानेश्वरी भगवद्गीता पर श्री ज्ञानेश्वर महाराज द्वारा रचित मराठी टीका है।) वे भगवद्गीता के एक अध्याय का नित्य पाठ करते तथा थोड़ा बहुत अन्य ग्रन्थों का भी अध्ययन करते थे। परन्तु जब भी वे ज्ञानेश्वरी का पाठ प्रारम्भ करते तो उनके समक्ष अनेक बाधाएँ उपस्थित हो जातीं, जिससे वे पाठ करने से सर्वथा वंचित रह जाया करते थे। तीन मास की छुट्टी लेकर वे शिरडी पधारे और तत्पश्चात् वे अपने घर पौड में विश्राम करने के लिये भी गये। अन्य ग्रन्थ तो वे पढ़ा ही करते थे, परन्तु जब ज्ञानेश्वरी का पाठ प्रारम्भ करते तो नाना प्रकार के कलुषित विचार उन्हें इस प्रकार घेर लेते कि लाचार होकर उसका पठन स्थगित करना पड़ता था। बहुत प्रयत्न करने पर भी जब उनको केवल दो चार ओवियाँ पढ़ना भी दुष्कर हो गया, तब उन्होंने यह निश्चय किया कि जब दयानिधि श्री साई ही कृपा करके इस ग्रन्थ के पठन की आज्ञा देंगे, तभी उसका श्रीगणेश करूँगा। सन् १९१४ के फरवरी मास में वे सहकुटुम्ब शिरडी पधारे। तभी श्री. जोग ने उनसे पूछा कि क्या आप ज्ञानेश्वरी का नित्य पठन करते हैं? श्री. देव ने उत्तर दिया कि ''मेरी इच्छा तो बहुत है, परन्तु मैं ऐसा करने में सफलता नहीं पा रहा हूँ। अब तो जब बाबा की आज्ञा होगी, तभी प्रारम्भ करूँगा।'' श्री. जोग ने सलाह दी कि ग्रन्थ की एक प्रति खरीद कर बाबा को भेंट करो और जब वे अपने करकमलों से स्पर्श कर उसे वापस लौटा दें, तब उसका पठन प्रारम्भ कर देना। श्री. देव ने कहा कि ''मैं इस प्रणाली को श्रेयस्कर नहीं समझता, क्योंकि बाबा तो अन्तर्यामी हैं और मेरे हृदय की इच्छा उनसे कैसे गुप्त रह सकती है? क्या वे स्पष्ट शब्दों में आज्ञा देकर मेरी मनोकामना पूर्ण न करेंगे?''

श्री. देव ने जाकर बाबा के दर्शन किये और एक रुपया दक्षिणा भेंट की। तब बाबा ने उनसे बीस रुपये दक्षिणा और माँगी, जो उन्होंने सहर्ष दे दिया। रात्रि के समय श्री. देव ने बालकराम से भेंट की और उनसे पूछा ''आपने किस प्रकार बाबा की भक्ति तथा कृपा प्राप्त की है?'' बालकराम ने कहा ''मैं दूसरे दिन आरती समाप्त होने के पश्चात् आपको पूर्ण वृत्तान्त सुनाऊँगा।'' दूसरे दिन जब श्री. देवसाहब दर्शनार्थ मस्जिद में आये तो बाबा ने फिर बीस रुपये दक्षिणा माँगी, जो उन्होंने सहर्ष भेंट कर दी। मसजिद में भीड़ अधिक होने के कारण वे एक ओर एकांत में जाकर बैठ गये। बाबा ने उन्हें बुलाकर अपने समीप बैठा लिया। आरती समाप्त होने के पश्चात् जब सब लोग अपने घर लौट गये, तब श्री. देव ने बालकराम से भेंटकर उनसे उनका पूर्व इतिहास जानने

की जिज्ञासा प्रगट की तथा बाबा द्वारा प्राप्त उपदेश और ध्यानादि के संबंध में पूछताछ की। बालकराम इन सब बातों का उत्तर देने ही वाले थे कि इतने में चन्द्रू कोढ़ी ने आकर कहा कि श्री. देव को बाबा ने याद किया है। जब देव बाबा के पास पहुँचे तो उन्होंने प्रश्न किया कि वे किससे और क्या बातचीत कर रहे थे? श्री. देव ने उत्तर दिया कि वे बालकराम से उनकी कीर्त्ति का गुणगान श्रवण कर रहे थे। तब बाबा ने उनसे पुनः २५ रुपये दक्षिणा माँगी, जो उन्होंने सहर्ष दे दी। फिर बाबा उन्हें भीतर ले गये और अपना आसन ग्रहण करने के पश्चात् उन पर दोषारोपण करते हुए कहा कि "मेरी अनुमति के बिना तुमने मेरी चिन्दियों की चोरी की है।" श्री. देव ने उत्तर दिया "भगवन्! जहाँ तक मुझे स्मरण है, मैंने ऐसा कोई कार्य नहीं किया है।" परन्तु बाबा कहाँ मानने वाले थे? उन्होंने अच्छी तरह से ढूँढ़ने को कहा। उन्होंने खोज की, परन्तु कहीं कुछ भी न पाया। तब बाबा ने क्रोधित होकर कहा कि तुम्हारे अतिरिक्त यहाँ और कोई नहीं है। तुम्हीं चोर हो। तुम्हारे बाल तो सफ़ेद हो गये हैं और इतने वृद्ध होकर भी तुम यहाँ चोरी करने को आये हो? इसके पश्चात् बाबा आपे से बाहर हो गये और उनकी आँखें क्रोध से लाल हो गईं। वे बुरी तरह से गालियाँ देने और डाँटने लगे। देव शान्तिपूर्वक सब कुछ सुनते रहे। वे मार पड़ने की भी आशंका कर रहे थे कि एक घण्टे के पश्चात् ही बाबा ने उनसे वाड़े को लौटने को कहा। वाड़े को लौटकर उन्होंने जो कुछ हुआ था, उसका पूर्ण विवरण जोग और बालकराम को सुनाया। दोपहर के पश्चात् बाबा ने सबके साथ देव को भी बुलाया और कहने लगे कि शायद मेरे शब्दों ने इस वृद्ध को पीड़ा पहुँचाई होगी। इन्होंने चोरी की है और इसे ये स्वीकार नहीं करते हैं। उन्होंने देव से पुनः बारह रुपये दक्षिणा माँगी, जो उन्होंने एकत्र करके सहर्ष भेंट करते हुए उन्हें नमस्कार किया। तब बाबा देव से कहने लगे कि "तुम आजकल क्या कर रहे हो?" देव ने उत्तर दिया कि "कुछ भी नहीं।" तब बाबा ने कहा "प्रतिदिन पोथी (ज्ञानेश्वरी) का पाठ किया करो। जाओ, वाड़े में बैठकर क्रमशः नित्य पाठ करो और जो कुछ भी तुम पढ़ो, उसका अर्थ दूसरों को प्रेम और भक्तिपूर्वक समझाओ। मैं तो तुम्हें सुनहरा शेला (दुपट्टा) भेंट देना चाहता हूँ, फिर तुम दूसरों के समीप चिन्दियों की आशा से क्यों जाते हो? क्या तुम्हें यह शोभा देता है?"

पोथी पढ़ने की आज्ञा प्राप्त करके देव अति प्रसन्न हुए। उन्होंने सोचा कि मुझे इच्छित वस्तु की प्राप्ति हो गई है और अब मैं आनन्दपूर्वक पोथी (ज्ञानेश्वरी) पढ़ सकूँगा। उन्होंने पुनः साष्टांग नमस्कार किया और कहा कि "हे प्रभु! मैं आपकी शरण हूँ। आपका अबोध शिशु हूँ। मुझे पाठ में सहायता कीजिये।" अब उन्हें चिन्दियों

का अर्थ स्पष्टतया विदित हो गया था। उन्होंने बालकराम से जो कुछ पूछा था, वह चिन्दी स्वरूप था। इन विषयों में बाबा को इस प्रकार का कार्य रुचिकर नहीं था। क्योंकि वे स्वयं प्रत्येक शंका का समाधान करने को सदैव तैयार रहते थे। दूसरों से निरर्थक पूछताछ करना वे अच्छा नहीं समझते थे, इसलिये उन्होंने डाँटा और क्रोधित हुए। देव ने इन शब्दों को बाबा का शुभ आशीर्वाद समझा तथा वे सन्तुष्ट होकर घर लौट गये।

यह कथा यहीं समाप्त नहीं होती। अनुमति देने के पश्चात् भी बाबा शान्त नहीं बैठे तथा एक वर्ष के पश्चात् ही वे श्री. देव के समीप गये और उनसे प्रगति के विषय में पूछताछ की। २ अप्रैल, सन् १९१४ गुरुवार को सुबह बाबा ने स्वप्न में देव से पूछा कि "क्या तुम्हें पोथी समझ में आई?" जब देव ने स्वीकारात्मक उत्तर न दिया तो बाबा बोले कि "अब तुम कब समझोगे?" देव की आँखों से टप-टप करके अश्रुपात होने लगा और वे रोते हुए बोले कि मैं निश्चयपूर्वक कह रहा हूँ कि हे भगवान्! जब तक आपकी कृपा रूपी मेघवृष्टि नहीं होती, तब तक उसका अर्थ समझना मेरे लिये सम्भव नहीं है और यह पठन तो भारस्वरूप ही है। तब वे बोले कि मेरे सामने मुझे पढ़कर सुनाओ। तुम पढ़ने में अधिक शीघ्रता किया करते हो। फिर पूछने पर उन्होंने अध्यात्म विषयक अंश पढ़ने को कहा। देव पोथी लाने गये और जब उन्होंने नेत्र खोले तो उनकी निद्रा भंग हो गई थी। अब पाठक स्वयं ही इस बात का अनुमान कर लें कि देव को इस स्वप्न के पश्चात् कितना आनंद प्राप्त हुआ होगा?

(श्री. देव अभी (सन् १९४४) जीवित हैं और मुझे गत ४-५ वर्षों के पूर्व उनसे भेंट करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। जहाँ तक मुझे पता चला है, वह यही है कि वे अभी भी ज्ञानेश्वरी का पाठ किया करते हैं। उनका ज्ञान अगाध और पूर्ण है। यह उनके साई लीला के लेख से स्पष्ट प्रतीत होता है।) (ता. १९.१०.१९४४)

॥ श्री सद्‌गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु ॥

अध्याय - ४२

महासमाधि की ओर (१)

भविष्य की आगाही - रामचन्द्र दादा पाटील और तात्या कोते पाटील की मृत्यु टालना - लक्ष्मीबाई शिन्दे को दान - अन्तिम क्षण।

बाबा ने किस प्रकार समाधि ली, इसका वर्णन इस अध्याय में किया गया है।

प्रस्तावना

गत अध्यायों की कथाओं से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि गुरुकृपा की केवल एक किरण ही भवसागर के भय से सदा के लिये मुक्त कर देती है तथा मोक्ष का पथ सुगम करके दुःख को सुख में परिवर्तित कर देती है। यदि सद्गुरु के मोहविनाशक पूजनीय चरणों का सदैव स्मरण करते रहोगे तो तुम्हारे समस्त कष्टों और भवसागर के दुःखों का अन्त होकर जन्म-मृत्यु के चक्र से छुटकारा हो जायेगा। इसलिये जो अपने कल्याणार्थ चिन्तित हों, उन्हें साई समर्थ के अलौकिक मधुर लीलामृत का पान करना चाहिये। ऐसा करने से उनकी मति शुद्ध हो जायेगी। प्रारम्भ में डॉक्टर पंडित का पूजन तथा किस प्रकार उन्होंने बाबा को त्रिपुंड लगाया, इसका उल्लेख मूल ग्रन्थ में किया गया है। इस प्रसंग का वर्णन ११ वें अध्याय में किया जा चुका है, इसलिये यहाँ उसका दुहराना उचित नहीं है।

भविष्य की आगाही

पाठको! आपने अभी तक केवल बाबा के जीवन-काल की ही कथायें सुनी हैं। अब आप ध्यानपूर्वक बाबा के निर्वाणकाल का वर्णन सुनिये। २८ सितम्बर, सन् १९१८ को बाबा को साधारण-सा ज्वर आया। यह ज्वर २-३ दिन तक रहा। इसके उपरान्त ही बाबा ने भोजन करना बिलकुल त्याग दिया। इससे उनका शरीर दिन-प्रतिदिन क्षीण एवं दुर्बल होने लगा। १७ दिनों के पश्चात् अर्थात् १५ अक्टूबर, सन् १९१८ को २

बजकर ३० मिनिट पर उन्होंने अपना शरीर त्याग दिया। (यह समय प्रो. जी.जी. नारके के तारीख ५-११-१९१८ के पत्र के अनुसार है, जो उन्होंने दादासाहेब खापर्डे को लिखा था और उस वर्ष की साईलीलापत्रिका के ७-८ पृष्ठ (प्रथम वर्ष) में प्रकाशित हुआ था)। इसके दो वर्ष पूर्व ही बाबा ने अपने निर्वाण के दिन का संकेत कर दिया था, परन्तु उस समय कोई भी समझ नहीं सका। घटना इस प्रकार है। विजया दशमी के दिन जब लोग सन्ध्या के समय 'सीमोल्लंघन' से लौट रहे थे तो बाबा सहसा ही क्रोधित हो गये। सिर पर का कपड़ा, कफनी और लँगोटी निकालकर उन्होंने उसके टुकड़े-टुकड़े करके जलती हुई धूनी में फेंक दिये। बाबा के द्वारा आहुति प्राप्त कर धूनी द्विगुणित प्रज्वलित होकर चमकने लगी और उससे भी कहीं अधिक बाबा के मुख-मंडल की कांति चमक रही थीं। वे पूर्ण दिगम्बर खड़े थे और उनकी आँखें अंगारे के समान चमक रही थीं। उन्होंने आवेश में आकर उच्च स्वर में कहा कि "लोगो! यहाँ आओ, मुझे देखकर पूर्ण निश्चय कर लो कि मैं हिन्दू हूँ या मुसलमान।" सभी भय से काँप रहे थे। किसी को भी उनके समीप जाने का साहस न हो रहा था। कुछ समय बीतने के पश्चात् उनके भक्त भागोजी शिन्दे, जो महारोग से पीड़ित थे, साहस कर बाबा के समीप गये और किसी प्रकार उन्होंने उन्हें लँगोटी बाँध दी और उनसे कहा कि "बाबा! यह क्या बात है? देव! आज दशहरा (सीमोल्लंघन) का त्योहार है।" तब उन्होंने जमीन पर सटका पटकते हुए कहा कि यह मेरा सीमोल्लंघन है। लगभग ११ बजे तक भी उनका क्रोध शान्त न हुआ और भक्तों को चावड़ी जुलूस निकलने में सन्देह होने लगा। एक घण्टे के पश्चात् वे अपनी सहज स्थिति में आ गये और सदा की भाँति पोशाक पहनकर चावड़ी जुलूस में सम्मिलित हो गये, जिसका वर्णन पूर्व में ही किया जा चुका है। इस घटना द्वारा बाबा ने इंगित किया कि जीवन-रेखा पार करने के लिये दशहरा ही उचित समय है। परन्तु उस समय किसी को भी उसका असली अर्थ समझ में न आया। बाबा ने और भी अन्य संकेत किये, जो इस प्रकार हैं:-

रामचन्द्र दादा पाटील की मृत्यु टालना

कुछ समय के पश्चात् रामचन्द्र पाटील बहुत बीमार हो गये। उन्हें बहुत कष्ट हो रहा था। सब प्रकार के उपचार किये गये, परन्तु कोई लाभ न हुआ और जीवन से हताश होकर वे मृत्यु के अंतिम क्षणों की प्रतीक्षा करने लगे। तब एक दिन मध्याह्न रात्रि के समय बाबा अनायास ही उनके सिरहाने प्रगट हुए। पाटील उनके चरणों से लिपट कर कहने लगे कि मैंने अपने जीवन की समस्त आशायें छोड़ दी हैं। अब कृपा कर मुझे

इतना तो निश्चित बतलाइये कि मेरे प्राण अब कब निकलेंगे? दया-सिन्धु बाबा ने कहा कि घबराओ नहीं। तुम्हारी हुण्डी वापस ले ली गई है और तुम शीघ्र ही स्वस्थ हो जाओगे। मुझे तो केवल तात्या का भय है कि सन् १९१८ में विजया दशमी के दिन उसका देहान्त हो जायेगा। किन्तु यह भेद किसी से प्रगट न करना और न ही उसे बतलाना। अन्यथा वह अधिक भयभीत हो जायेगा। रामचन्द्र अब पूर्ण स्वस्थ तो हो गये, परन्तु वे तात्या के जीवन के लिये निराश हुए। उन्हें ज्ञात था कि बाबा के शब्द कभी असत्य नहीं निकल सकते और दो वर्ष के पश्चात् ही तात्या इस संसार से विदा हो जायेगा। उन्होंने यह भेद बाला शिंपी के अतिरिक्त किसी से भी प्रगट न किया। केवल दो ही व्यक्ति - रामचंद्र दादा और बाला शिंपी तात्या के जीवन के लिये चिन्ताग्रस्त और दुःखी थे।

रामचंद्र ने शैया त्याग दी और वे चलने-फिरने लगे। समय तेजी से व्यतीत होने लगा। शके १८४० का भाद्रपद समाप्त होकर आश्विन मास प्रारम्भ होने ही वाला था कि बाबा के वचन पूर्णतः सत्य निकले। तात्या बीमार पड़ गये और उन्होंने चारपाई पकड़ ली। उनकी स्थिति इतनी गंभीर हो गई कि अब वे बाबा के दर्शनों को भी जाने में असमर्थ हो गये। इधर बाबा भी ज्वर से पीड़ित थे। तात्या का पूर्ण विश्वास बाबा पर था और बाबा का भगवान श्रीहरि पर, जो उनके संरक्षक थे। तात्या की स्थिति अब और अधिक चिन्ताजनक हो गई। वह हिलडुल भी न सकता था और सदैव बाबा का ही स्मरण किया करता था। इधर बाबा की भी स्थिति उत्तरोत्तर गंभीर होने लगी। बाबा द्वारा बतलाया हुआ विजया-दशमी का दिन भी निकट आ गया। तब रामचंद्र दादा और बाला शिंपी बहुत घबरा गये। उनके शरीर काँप रहे थे, पसीने की धारायें प्रवाहित हो रही थीं, कि अब तात्या का अन्तिम साथ है। जैसे ही विजया-दशमी का दिन आया, तात्या की नाड़ी की गति मन्द होने लगी और उसकी मृत्यु सन्निकट दिखलाई देने लगी। उसी समय एक विचित्र घटना घटी। तात्या की मृत्यु टल गई और उसके प्राण बच गये, परन्तु उसके स्थान पर बाबा स्वयं प्रस्थान कर गये और ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे कि परस्पर हस्तान्तरण हो गया हो। सभी लोग कहने लगे कि बाबा ने तात्या के लिये प्राण त्यागे। ऐसा उन्होंने क्यों किया, यह वे ही जानें, क्योंकि यह बात हमारी बुद्धि के बाहर की है। ऐसा भी प्रतीत होता है कि बाबा ने अपने अन्तिम काल का संकेत तात्या का नाम लेकर ही किया था।

दूसरे दिन १६ अक्टूबर को प्रातःकाल बाबा ने दासगणू को पंढरपुर में स्वप्न दिया कि मसजिद अर्रा करके गिर पड़ी है। शिरडी के प्रायः सभी तेली तम्बोली मुझे कष्ट देते

थे। इसलिये मैंने अपना स्थान छोड़ दिया है। मैं तुम्हें यह सूचना देने आया हूँ कि कृपया शीघ्र वहाँ जाकर मेरे शरीर पर हर तरह के फूल इकट्ठा कर चढ़ाओ। दासगणू को शिरडी से भी एक पत्र प्राप्त हुआ और वे अपने शिष्यों को साथ लेकर शिरडी आये तथा उन्होंने बाबा की समाधि के समक्ष अखंड कीर्त्तन और हरिनाम प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने स्वयं फूलों की माला गूँथी और ईश्वर का नाम लेकर समाधि पर चढ़ाई। बाबा के नाम पर एक वृहद् भोज का भी आयोजन किया गया।

लक्ष्मीबाई को दान

विजयादशमी का दिन हिन्दुओं को बहुत शुभ है और सीमोल्लंघन के लिये बाबा द्वारा इस दिन का चुना जाना सर्वथा उचित ही है। इसके कुछ दिन पूर्व से ही उन्हें अत्यन्त पीड़ा हो रही थी, परन्तु आन्तरिक रूप में वे पूर्ण सजग थे। अन्तिम क्षण के पूर्व वे बिना किसी की सहायता लिये उठकर सीधे बैठ गये और स्वस्थ दिखाई पड़ने लगे। लोगों ने सोचा कि संकट टल गया और अब भय की कोई बात नहीं है तथा अब वे शीघ्र ही नीरोग हो जायेंगे। परन्तु वे तो जानते थे कि अब मैं शीघ्र ही विदा लेने वाला हूँ और इसलिये उन्होंने लक्ष्मीबाई शिन्दे को कुछ दान देने की इच्छा प्रगट की।

समस्त प्राणियों में बाबा का निवास

लक्ष्मीबाई एक उच्च कुलीन महिला थीं। वे मसजिद में बाबा की दिन-रात सेवा किया करती थीं। केवल भगत म्हालसापति, तात्या और लक्ष्मीबाई के अतिरिक्त रात को मसजिद की सीढ़ियों पर कोई नहीं चढ़ सकता था। एक बार सन्ध्या समय जब बाबा तात्या के साथ मसजिद में बैठे हुए थे, तभी लक्ष्मीबाई ने आकर उन्हें नमस्कार किया। तब बाबा कहने लगे कि "अरी लक्ष्मी, मैं अत्यन्त भूखा हूँ।" वे यह कहकर लौट पड़ीं कि "बाबा, थोड़ी देर ठहरो, मैं अभी आपके लिये रोटी लेकर आती हूँ।" उन्होंने रोटी और साग लाकर बाबा के सामने रख दिया, जो उन्होंने एक भूखे कुत्ते को दे दिया। तब लक्ष्मीबाई कहने लगीं कि "बाबा यह क्या? मैं तो शीघ्र गई और अपने हाथ से आपके लिये रोटी बना लाई। आपने एक ग्रास भी ग्रहण किये बिना उसे कुत्ते के सामने डाल दिया। तब आपने व्यर्थ ही मुझे यह कष्ट क्यों दिया?" बाबा ने उत्तर दिया कि "व्यर्थ दुःख न करो। **कुत्ते की भूख शांत करना मुझे तृप्त करने के बराबर ही है। कुत्ते की भी तो आत्मा है।** प्राणी चाहे भले ही भिन्न आकृति-प्रकृति के हों, उनमें कोई बोल सकते हैं और कोई मूक हैं, परन्तु भूख सबकी एक सदृश ही है। इसे तुम सत्य जानो कि **जो भूखों को भोजन कराता है, वह यथार्थ में मुझे ही भोजन**

कराता है। यह एक अकाट्य सत्य है।" इस साधारण-सी घटना के द्वारा बाबा ने एक महान् आध्यात्मिक सत्य की शिक्षा प्रदान की कि बिना किसी की भावनाओं को कष्ट पहुँचाये किस प्रकार उसे नित्य व्यवहार में लाया जा सकता है। इसके पश्चात् ही लक्ष्मीबाई उन्हें नित्य ही प्रेम और भक्तिपूर्वक दूध, रोटी व अन्य भोजन देने लगीं, जिसे वे स्वीकार कर बड़े चाव से खाते थे। वे उसमें से कुछ खाकर शेष लक्ष्मीबाई के द्वारा ही राधाकृष्ण माई के पास भेज दिया करते थे। इस उच्छिष्ट अन्न को वे प्रसाद स्वरूप समझ कर प्रेमपूर्वक पाती थीं। इस रोटी की कथा को असंबद्ध नहीं समझना चाहिये। इससे सिद्ध होता है कि सभी प्राणियों में बाबा का निवास है, जो सर्वव्यापी, जन्म-मृत्यु से परे और अमर हैं।

बाबा ने लक्ष्मीबाई की सेवाओं को सदैव स्मरण रखा। बाबा उनको भुला भी कैसे सकते थे? देह-त्याग के बिल्कुल पूर्व बाबा ने अपनी जेब में हाथ डाला और पहले उन्होंने लक्ष्मी को पाँच रुपये और बाद में चार रुपये, इस प्रकार कुल नौ रुपये दिये। यह नौ की संख्या इस पुस्तक के अध्याय २१ में वर्णित नवविधा भक्ति की द्योतक है अथवा यह सीमोल्लंघन के समय दी जानेवाली दक्षिणा भी हो सकती है। लक्ष्मीबाई एक सुसंपन्न महिला थी। अतएव उन्हें रुपयों की कोई आवश्यकता नहीं थी। इस कारण संभव है कि बाबा ने उनका ध्यान प्रमुख रूप से श्रीमद्भागवत के स्कन्ध ११, अध्याय १० के श्लोक सं. ६ की ओर आकर्षित किया हो, जिसमें उत्कृष्ट कोटि के भक्त के नौ लक्षणों[१] का वर्णन है, जिनमें से पहले ५ और बाद में ४ लक्षणों का क्रमशः प्रथम और द्वितीय चरणों में उल्लेख हुआ है। बाबा ने भी उसी क्रम का पालन किया (पहले ५ और बाद में ४; कुल ९) केवल ९ रुपये ही नहीं, बल्कि नौ के कई गुने रुपये लक्ष्मीबाई के हाथों में आये-गये होंगे, किन्तु बाबा के द्वारा प्रदत्त यह नौ (रुपये) का उपहार वह महिला सदैव स्मरण रखेगी।

अंतिम क्षण

बाबा सदैव सजग और चैतन्य रहते थे और उन्होंने अन्तिम समय भी पूर्ण सावधानी से काम लिया। अपने भक्तों के प्रति बाबा का हृदय प्रेम, ममता या मोह से ग्रस्त न हो जाय, इस कारण उन्होंने अन्तिम समय सबको वहाँ से चले जाने का आदेश दिया।

१. अमान्यमत्सरो दक्षो निर्ममो दृढ़सौहृदः।
असत्वरोऽर्थ जिज्ञासुर्नसूयुरमोघवाक्॥

चिन्तामग्न काकासाहेब दीक्षित, बापूसाहेब बूटी और अन्य महानुभाव, जो मसजिद में बाबा की सेवा में उपस्थित थे, उनको भी बाबा ने वाड़े में जाकर भोजन करके लौट आने को कहा। ऐसी स्थिति में वे बाबा को अकेला छोड़ना तो नहीं चाहते थे, परन्तु उनकी आज्ञा का उल्लंघन भी तो नहीं कर सकते थे। इसलिये इच्छा न होते हुए भी उदास और दुःखी हृदय से उन्हें वाड़े को जाना पड़ा। उन्हें विदित था कि बाबा की स्थिति अत्यन्त चिन्ताजनक है और इस प्रकार उन्हें अकेले छोड़ना उचित नहीं है। वे भोजन करने के लिये बैठे तो, परन्तु उनके मन कहीं और (बाबा के साथ) थे। अभी भोजन समाप्त भी न हो पाया था कि बाबा के नश्वर शरीर त्यागने का समाचार उनके पास पहुँचा और वे अधपेटे ही अपनी अपनी थाली छोड़कर मसजिद की ओर भागे तथा जाकर देखा कि बाबा सदा के लिये बयाजी आपा कोते की गोद में विश्राम कर रहे हैं। न वे नीचे लुढ़के और न शैया पर ही लेटे, अपने ही आसन पर शान्तिपूर्वक बैठे हुए और अपने ही हाथों से दान देते हुए उन्होंने यह मानव-शरीर त्याग दिया। सन्त स्वयं ही देह धारण करते तथा कोई निश्चित ध्येय लेकर इस संसार में प्रगट होते हैं और जब ध्येय पूर्ण हो जाता है तो वे जिस सरलता और आकस्मिकता के साथ प्रगट होते हैं, उसी प्रकार लुप्त भी हो जाया करते हैं।

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु ॥

● ● ●

सप्ताह पारायणः षष्ठ विश्राम